

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

प्रज्ञावतार प्रकरण

सत्रस्यान्त्यमभूदद्य दिनं जिज्ञासवः समे।
संतुष्टा मुनयो लब्धैर्विचारैस्ते मनीषिणः ॥ १ ॥
लब्धुं ततोऽधिकं चाद्य महत्त्वमहिता भृशम्।
विचारसंपदाकाले नियते ते समागताः ॥ २ ॥
प्रश्नकर्त्ता मुनिश्रेष्ठोऽगस्त्यः पप्रच्छ सादरम्।
लोककल्याणभावेन करुणः स महामनाः ॥ ३ ॥

टीका—आज सत्र का अंतिम दिन था। जिज्ञासु मुनि-
मनीषियों को अब तक की उपलब्धियों पर बड़ा संतोष था।
वे आज और भी अधिक महत्वपूर्ण विचार-संपदा उपलब्ध
करने की आशा लेकर नियत समय पर उपस्थित हुए। प्रश्नकर्त्ता
दयालु उदारात्मा ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्य ने लोककल्याण भावना
से पूछा ॥ १-३ ॥

अगस्त्य उवाच—

देव! विकृतयो यास्तु सामान्याच्च विपन्नताः।
भवत्येव समाधानं तासां साधुजनोद्भवम् ॥ ४ ॥
परं विभीषिका अत्र विषमास्ता अनेकशः।
समायांति तथा यासां समाधानं न दृश्यते ॥ ५ ॥
जायंते निष्फलाः सर्वे यत्नाः साधुजनैः कृताः।
विनाशो दृश्यते चाग्रे सर्वग्रासकरो महान् ॥ ६ ॥
परिस्थितीर्विलोक्याद्य तेन देव प्रतीयते।
खंडप्रलयकालः किं समायातो भयंकरः ॥ ७ ॥

टीका—अगस्त्य ने कहा, देव! सामान्य विकृतियों और
विपन्नताओं का निराकरण तो सुधारक महामानवों के प्रयत्नों
से होते रहते हैं, परंतु कई बार ऐसी विषम विभीषिकाएँ आ

उपस्थित होती हैं, जिनमें कोई समाधान नहीं दीखता। सुधारकों
के प्रयत्न विफल होने लगते हैं, और सर्वनाशी विनाश सामने
खड़ा दीखता है। देव! इन दिनों की परिस्थितियाँ देखकर
लगता है, खंडप्रलय का भयंकर समय आ गया है ॥ ४-७ ॥

अनाचारैश्च मर्त्यानां रुष्टायाः प्रकृतेरिह।
कोपो वर्षति भिन्नेषु रूपेष्वेव निरंतरम् ॥ ८ ॥
प्रातिकूलस्य चाऽस्यायं क्षुद्रस्तु पुरुषः कथम्।
प्रतिकर्तुं समर्थः स्यादल्पज्ञश्चाल्पशक्तिकः ॥ ९ ॥
विज्ञानवरदानं स्वदुष्प्रवृत्तेस्तु कारणात्।
अभिशापं व्यधादेव सृष्टिनाशकरं परम् ॥ १० ॥
व्यक्तीनां च समाजस्य स्थितिष्वेतासु निश्चितम्।
विश्वस्याभूद् भविष्यत्तदन्धकारमयं ध्रुवम् ॥ ११ ॥
देव संकट एषोऽत्र निर्मरिष्यति वा न वा।
महाप्रलयकालो वा समायातोऽस्त्यकालिकः ॥ १२ ॥
सत्राध्यक्षश्चिकालज्ञश्चिंता - परतयाऽथ सः।
कात्यायन उवाचैवं हितं वाक्यं महामुनिः ॥ १३ ॥

टीका—मानवी अनाचार से रुष्ट प्रकृति के अनेकानेक
प्रकोप बरसने लगे हैं। इस प्रतिकूलता का सामना अल्पज्ञ
और अल्पशक्तिवाला क्षुद्र मनुष्य किस प्रकार कर सकेगा।
उसने तो विज्ञान के वरदान तक को अपनी दुष्प्रवृत्तियों के
कारण सृष्टि विनाशक अभिशाप जैसा बनाकर रख दिया है।
इन परिस्थितियों में व्यक्तियों का समाज का विश्व का भविष्य
अंधकारमय ही दीख पड़ता है। हे देव! बताएँ कि यह संकट
टलेगा भी या नहीं? कहीं महाप्रलय का समय समीप तो नहीं
आ गया। त्रिकालदर्शी सत्राध्यक्ष महामुनि कात्यायन भविष्य

की चिंता से बोले ॥ ८-१३ ॥

चित्रितात्वधुनैवात्र पूर्वतो या परिस्थितिः।

महाभाग! न संदेहस्तस्यगंभीरता - विधौ ॥ १४ ॥

तथाप्यस्माभिरेषोऽत्र कार्यो विश्वास उत्तमः।

स्रष्टेमां तु धरित्रीं स्वां व्यधात्सर्वोत्तमां कृतिः ॥ १५ ॥

मनुष्यरचना सेयं विहिता ब्रह्मणेदृशी।

दृश्यमानं स्वरूपं स स्रष्टुरित्येव मन्यताम् ॥ १६ ॥

नियंता सहते नैव विनाशं कुत्रचित्प्रभुः।

ईदृश्याः शोभनायाः स सृष्टेः सृष्टिकरः स्वयम् ॥ १७ ॥

टीका—कात्यायन ने कहा, हे महाभाग अभी परिस्थितियों का जो चित्रण किया गया है, उनकी गंभीरता में तनिक भी संदेह नहीं है, फिर भी हम सबको यह विश्वास करना चाहिए कि स्रष्टा ने इस धरती को अपनी सर्वोत्तम कलाकृति के रूप में रचा है। मनुष्य की संरचना ही इस प्रकार की गई है, मानो वह स्रष्टा का दृश्यमान स्वरूप ही हो। ऐसे सृजन को सृष्टि का कर्ता व नियंता प्रभु नष्ट नहीं होने दे सकते ॥ १४-१७ ॥

ऋषि इस तथ्य से सहमत हैं कि स्थिति बहुत खराब है। मनुष्य उन्हें नियंत्रित कर सकेगा ऐसा नहीं लगता। यह दृष्टि निराशा पैदा करती है। परंतु एक दूसरी दृष्टि भी है। वह यह कि यदि यही परिस्थितियाँ रहीं तो मानवी सभ्यता नष्ट हो जाएगी। उसे भगवान नष्ट नहीं होने देंगे, ऐसा उनका आश्वासन है। अस्तु किसी दिव्य प्रवाह के प्रभाव से यह विषम परिस्थितियाँ ही समाप्त हो जाएँगी, यह सुनिश्चित है। एक शासन हटता दूसरा आता है तो उस मध्यकाल में कई प्रकार की उलट-पुलट होती देखी गई है। गर्भस्थ बालक जब छोटी उदरदरी से बाहर निकलकर सुविस्तृत विश्व में प्रवेश करता है तो माता को प्रसव सहनी पड़ती है और बच्चा जीवन मरण से जूझने वाला पुरुषार्थ करता है। प्रभातकाल से पूर्व की घड़ियों में तमिस्रा चरम सीमा तक पहुँचती है। दीपक के बुझते समय बाती का उछलना, फुदकना देखते ही बनता है। मरणासन्न की साँसें इतनी तेजी से चलती हैं, मानो वह निरोग और बलिष्ठ बनने जा रहा हो। चींटी के जब अंतिम दिन आते हैं तब उसके पर उगते हैं। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि परिवर्तन की घड़ियाँ असाधारण उलट-पुलट की होती हैं। उन दिनों अव्यवस्था फैलती असुविधा होती और कई बार संकट विग्रह की घटा भी घुमड़ती है। युग परिवर्तन की इस संधि बेला में भी ऐसा ही हो रहा है।

अवशाश्च मनुष्यस्य जायंते स्थितयो यदा।

व्यवस्था - सूत्रधारत्वं स्रष्टागृह्णाति तु स्वयम् ॥ १८ ॥

व्यवस्थापयतीत्यं स येनालोकोदयो भवेत्।

अंधकारोऽवतारस्य प्रक्रियेयं तु विद्यते ॥ १९ ॥

जना आश्वासिताः सर्वे दृढं भगवता स्वयम्।

धर्मग्लानावधर्मस्याभ्युत्थानेऽवतराम्यहम् ॥ २० ॥

अनौचित्यमधर्मं च निराकर्तुं स्वयं प्रभुः।

देवोऽत्रावतरत्येव काले विषमतां गते ॥ २१ ॥

कार्यं यन्नभवेत् पूर्णं सामान्यैस्तु जनैरिह।

समापयति तत्सर्वं स्वयं निर्धारणैः स्वकैः ॥ २२ ॥

पुरातने च काले स भगवान् विश्वभावनः।

अवातरत् स्थितावत्र विषमायामनेकशः ॥ २३ ॥

टीका—मनुष्य के हाथ से जब परिस्थितियाँ बाहर चली जाती हैं, तो प्रवाह की बागडोर स्रष्टा स्वयं सँभालते हैं और ऐसी व्यवस्था बनाते हैं, जिससे अंधकार में प्रकाश उत्पन्न हो सके। यह अवतार की प्रक्रिया है। भगवान ने इन लोकवासियों को आश्वासन दिया है कि धर्म की ग्लानि व अधर्म का उत्थान होने पर मैं पृथ्वी पर अवतार लेता हूँ। अधर्म का अनौचित्य का निवारण करने के लिए विषम बेला में वे स्वयं प्रकट होते हैं और जो काम सामान्य जनों से संपन्न नहीं हो पाता, उसे अपने निर्धारणों द्वारा स्वयं पूर्ण करते हैं। पुरातन काल में ऐसी ही विषम परिस्थितियों में भगवान ने अनेकों बार अवतार लिए हैं ॥ १८-२३ ॥

व्यक्ति कितना ही समर्थ क्यों न हो वह शरीर तक सीमित रहने के कारण समीपवर्ती क्षेत्र में ही यथा शक्ति पुरुषार्थ कर सकता है। वातावरण बदलने, व्यापक परिस्थितियाँ सुधारने जैसे बड़े कामों के लिए स्रष्टा को स्वयं लगाम सँभालनी पड़ती है। असंतुलन को संतुलन में बदलने की उसने प्रतिज्ञा भी की हुई है। जब धर्म से अधर्म का अनुपात बढ़ जाता है और सँभालना मानवी क्षमता से बाहर चला जाता है, तो उसे सँभालने की जिम्मेदारी स्रष्टा को ही सँभालनी पड़ती है।

अगस्त्य उवाच-

आदितो देव ! सृष्टेर्ये जाता अद्यावधि प्रभोः।

अवताराः समे वर्ण्या जिज्ञासा श्रोतुमस्ति नः ॥ २४ ॥

सत्राध्यक्ष उवाच-

अवताराः प्रभोर्दिव्यदर्शिर्भिदश वर्णिताः।

लीलोद्देश्य - स्वरूपाणि पुराणादिषु दृश्यताम् ॥ २५ ॥

टीका—अगस्त्य ने कहा, हे देव सृष्टि के आदि से लेकर अब तक हुए भगवान के अवतारों का वर्णन करें, सुनने की जिज्ञासा हो रही है। सत्राध्यक्ष बोले, भगवान के दश अवतारों का दिव्यदर्शियों ने वर्णन किया है। शास्त्रों पुराणों में उनके स्वरूप, उद्देश्य और लीला-संदोहों का वर्णन है ॥ २४-२५ ॥

पुराणों में कहीं दस अवतार का वर्णन है, कहीं चौबीस का। जहाँ चौबीस का उल्लेख है, वहाँ उसे गायत्री के चौबीस

४.५४ प्रज्ञोपनिषद्

अक्षरों की ओर, चौबीस शक्तियों की ओर किया गया संकेत समझा जाना चाहिए। दत्तात्रेय के चौबीस गुरु दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में यही है। चौबीस ऋषि, चौबीस देवता ज्योतिर्लिंग चौबीस शक्ति पीठें, इसी चौबीस अवतार प्रकरण के साथ जुड़ती हैं। उद्देश्य सबका एक ही है। अधर्म का नाश और धर्म का संस्थापन। प्रकारांतर से यही कार्य सभी अवतारों ने अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुरूप अपने-अपने ढंग से किया है।

अवतारों को व्यक्ति नहीं, प्रवाह समझा जाना चाहिए। जो अदृश्य प्रेरणाओं और योजनाओं को लेकर धरती पर आते हैं और तत्कालीन आत्माओं को अपनी सहयोगी, सहचर बनाने में समर्थ होते हैं।

पुराणों में दस अवतारों को प्रधान माना गया है। मनुष्य बिगाड़ तो कर लेता है, पर परिस्थिति काबू से बाहर हो जाने पर सँभालना उसके वश की बात नहीं रहती। अग्निकांड तो माचिस की एक तीली भी खड़ा कर देती है, पर उसे बुझाने के लिए फायर बिग्रेड बुलाने पड़ते हैं। किसी किले को विस्मार करने के लिए डायनामाइट का एक कारतूस भी पर्याप्त है, पर उसे नए सिरे से बनाने के लिए कुशल इंजीनियर, अगणित श्रमिकों और प्रचुर साधन जुटाने में कोई वरिष्ठ ही समर्थ होते हैं। वनों की रगड़ से दावानल उत्पन्न हो जाता है, पर बुझाने के लिए वर्षा के बादल ही काम आते हैं। शासन की छोटी इकाइयाँ जब अपने काम ठीक तरह नहीं कर पातीं, तो उन्हें बरखास्त करके राष्ट्रपति शासन लगता है और सत्ता अपने हाथ में लेकर असंतुलन को संतुलन में बदला जाता है। विषम परिस्थितियों पर काबू पाने में जब मनुष्य की सामर्थ्य काम नहीं आती है, तो फिर उसे भगवान के प्रेरित प्रवाह-अवतार ही काबू में लाते हैं। पागल हाथी की जैसी परिस्थितियों को काबू में लाने के लिए प्रेक्षित हंटर मारकर ही उसे वशवर्ती करते हैं। अवतार को ऐसा ही कुछ समझा जा सकता है।

आद्यो मत्स्यावतारस्तु प्रास्तौषीद् बीजतस्तरोः ।

निर्मितेरिव प्रामाण्यं बोधिताः सकला जनाः ॥ २६ ॥

साधनानि लघून्त्रोद्देश्यैरुच्चगतैर्यदि ।

युज्यन्ते तानि गच्छन्ति स्वयमेवोच्चतामिह ॥ २७ ॥

सत्यव्रतस्य राजर्षेः कमंडलुगतः स्वयम् ।

मत्स्यो वृद्धिं गतो जातः समुद्र इव विस्तृतः ॥ २८ ॥

टीका—प्रथम मत्स्यावतार हुआ, जिसने बीज से वृक्ष बनने जैसा उदाहरण प्रस्तुत किया और बताया कि छोटे साधन भी उच्च उद्देश्यों के साथ जुड़ने पर महान हो जाते हैं। राजर्षि सत्यव्रत के कमंडलु में रखी मछली, समुद्र जितनी सुविस्तृत हो गई थी ॥ २६-२८ ॥

अवतारो द्वितीयश्च कच्छपोऽभूत्स उत्तमः ।

श्रमसहयोगजं सर्वान् बोधयामास स्वं मतम् ॥ २९ ॥

प्रेरयामास देवान् स दैत्यानपि पयोनिधिम् ।

मथितुं तेभ्य एवायं श्रेयोऽयात्सकलं ततः ॥ ३० ॥

स्वयं चाप्रकटोभारं मंदरस्यातुलं प्रभुः ।

उवाह पृष्ठे श्रेष्ठानां कर्मोक्तं भूसौहृदम् ॥ ३१ ॥

टीका—द्वितीय कच्छप अवतार हुआ। उसने सहयोग और श्रम से संपदा होने का सिद्धांत समझाया। देवता और असुरों को मिल-जुलकर समुद्र मंथन के लिए उकसाया। श्रेय उन्हें दिया, स्वयं अप्रकट रहकर मंदराचल का सारा भार अपनी पीठ पर उठाते रहे। प्राणिमात्र के प्रति हितैषी दृष्टि रखना श्रेष्ठों का कर्तव्य है ॥ २९-३१ ॥

अवतारस्तृतीयोऽभूद् वराहो युयुधे स्वयम् ।

हिरण्याक्षस्य दुर्धर्षप्रवृत्त्या सञ्चयस्य यः ॥ ३२ ॥

चकार शमनं पूर्णमाधिपत्यस्य तस्य सः ।

सुलभां सम्पदां चक्रे सर्वेभ्यः करुणापरः ॥ ३३ ॥

टीका—तृतीय था वाराहवतार, जिसने हिरण्याक्ष की दुर्धर्ष संचय प्रवृत्ति से सीधा मल्लयुद्ध किया। आधिपत्य का शमन किया और धरती की संपदा सर्वसाधारण के लिए दयालु प्रभु ने सुलभ कराई ॥ ३२-३३ ॥

नरसिंहावतारश्च चतुर्थोऽभूत्सुपोष यः ।

सौहार्द्रं दुर्बले जाते तस्मिन् कालप्रभावतः ॥ ३४ ॥

नीतिमत्ता प्रतीकं च प्रह्लादं संरक्ष यः ।

अंते महाबलं दैत्यं हिरण्यकशिपुं प्रभुः ॥ ३५ ॥

हत्वा सत्पात्रमेनं च प्रह्लादं जनता - प्रियम् ।

स्थाने निवेशयामास सत्पात्रं तस्य संततिम् ॥ ३६ ॥

टीका—चतुर्थ नरसिंह अवतार थे। जिनने काल के प्रभाव से सदाशयता के दुर्बल पड़ने पर उसका पुष्ट-पोषण किया। बार-बार नीतिमत्ता के प्रतीक पक्षधर प्रह्लाद को बचाया और अंततः महाबली हिरण्यकश्यपु का दमन करके उसके स्थान पर सत्पात्र प्रह्लाद को बिठाया ॥ ३४-३६ ॥

वामनः पञ्चमः प्रोक्तः सद्भावं जागृतं व्यधात् ।

योऽसुराणां धनं लोकहिते दातुं शशाक च ॥ ३७ ॥

केवलं दमनं नैव विधिः शासनसम्मतः ।

परिवर्तनमप्यस्ति चेतसो विधिरुत्तमः ॥ ३८ ॥

टीका—पंचम अवतार वामन हैं। उन्होंने असुरों की प्रसुप्त सद्भावना जगाई और वैभव को जनहित में विसर्जन करने में सफलता पाई। बताया कि दमन ही नहीं हृदय परिवर्तन भी एक महत्वपूर्ण उपाय है ॥ ३७-३८ ॥

षष्ठः परशुरामश्च विद्यते स्वीचकार यः ।

दुष्टतानाशसंकल्पं यतो नैव कदाचन ॥ ३९ ॥

पिशाचतां गता लोकाः पशवो नैव शिक्षया ।

क्षमयाऽहि विनेतुं च शक्यास्तेन हताः समे ॥ ४० ॥

वधेनैव तदा तादृग् युगः संस्कर्तुमिष्यते ।

परशुना प्रचंडेन चकारेदमनेकशः ॥ ४१ ॥

टीका—छठा अवतार परशुराम है। उन्होंने दुष्टता के दमन का संकल्प लिया था। पशु और पिशाच वर्ग के लोगों को न विनय से सुधारा जा सकता है, न शिक्षा क्षमा से, इसी से उनका वध किया। प्रताड़ना व वध ही ऐसे युग को सुधार पाते हैं। यही भगवान परशुराम ने अपने प्रचंड परशु का अनेक बार प्रयोग करके कर दिखाया ॥ ३९-४१ ॥

सप्तमो राम उक्तश्चावतारो लोक उच्यते ।

जनैः श्रद्धायुतैः सर्वैर्मर्यादापुरुषोत्तमः ॥ ४२ ॥

कष्टानि सहमानोऽपि व्यतिचक्राम नो मनाक् ।

मर्यादानिरतोऽभूच्च धर्मस्य प्रतिपादने ॥ ४३ ॥

मूर्तिमान् धर्म एवायमुच्यते पुरुषो जनैः ।

एकपत्नीव्रती सर्वभूतात्मा वेदशासितः ॥ ४४ ॥

टीका—सातवाँ अवतार राम है, जिन्हें श्रद्धालु जनों द्वारा मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है। उन्होंने स्वयं कष्ट सहते, किंतु मर्यादाओं का व्यतिक्रम नहीं किया। धर्मधारणा के प्रतिपादन में निरत रहे। उन्हें सजीव धर्म पुरुष कहा जाता है। वह वेदनाकूल चरित्रवाले, प्राणीमात्र के हितैषी एक पत्नीव्रती थे ॥ ४२-४४ ॥

कृष्ण एवाष्टमः पूर्णोऽवतारो विद्यते स्वयम् ।

दूरीकर्तुमनीतीर्यश्चातुर्यस्य तथैव च ॥ ४५ ॥

सर्वप्रकारकस्योक्तः कौशलस्यायमुत्तमः ।

नीतिनिर्धारको लक्ष्ये पवित्रे स्थितिरूपतः ॥ ४६ ॥

परिवर्तनमप्येष स्वीचकारोच्यते जनैः ।

नीतिज्ञो यो व्यधानीतिं लक्ष्यगां न क्रियागताम् ॥ ४७ ॥

टीका—आठवाँ अवतार कृष्ण का है, जिन्हें अनीति को निरस्त करने के लिए चातुर्य और सर्वविध कौशल का नीति-निर्धारक कहा जाता है। लक्ष्य पवित्र होने पर वे परिस्थिति के अनुरूप व्यवहार बदलने पर विश्वास करते थे। उन्होंने नीति को क्रिया के साथ नहीं, लक्ष्य के साथ जोड़ा। वे नीति पुरुष कहलाए ॥ ४५-४७ ॥

बुद्धावतारो नवमो बुद्धिं धर्ममथापि च ।

संघं प्रधानरूपेण स्वीचक्रे जनमंगलम् ॥ ४८ ॥

तपः - पौरुषशक्त्या स संघमुच्चात्मनां नृणाम् ।

व्यधाद् भूयश्च तान् सर्वान् प्रेषयामासभूतले ॥ ४९ ॥

जनान् प्रशिक्षितान् कर्तुमालोकं दातुमुत्तमम् ।

काले तस्मिंस्तदैवाभूद् वसुधा मंगलोदिता ॥ ५० ॥

काले व्यक्तिषु तत्रैवं बहुप्रचलनेष्वपि ।

परिवर्तनमाधातुं साफल्यं प्राप सोऽद्भुतम् ॥ ५१ ॥

अतएवोच्यते बुद्धेर्देवता बुद्ध उत्तमैः ।

रोगशोकजराजीर्णं जगद्बीक्ष्याद्रवच्च यः ॥ ५२ ॥

टीका—नवें बुद्धावतार थे। उन्होंने जनहित में बुद्धि, धर्म और संघ को प्रधानता दी। तप और पुरुषार्थ किया। उच्च आत्माओं का समुदाय समेटा उसे प्रशिक्षित करने और आलोक वितरण के लिए विश्व के कोने-कोने में भेजा। इसी से उस समय पृथ्वी मंगलमयी बन गई। समय को, व्यक्तियों को और प्रचलनों को बदलने में भारी सफलता पाई। इसीलिए श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा उन्हें बुद्धि का देवता कहा जाता है, रोग-शोक व वृद्धता से जर्जर विश्व को देखकर जिनका हृदय करुणा से द्रवित हो गया था ॥ ४८-५२ ॥

प्रज्ञावतारो कल्किश्च निष्कलंकोऽपि वा पुनः ।

दशमोऽयं च लोकेऽस्मिन् अवतारस्तु विद्यते ॥ ५३ ॥

अस्यावतरणस्याद्य भूमिका - काल आगतः ।

आगते युगसंधेश्च प्रभाते शुभपर्वणि ॥ ५४ ॥

महाप्रज्ञेति रूपे च साद्यश्चक्तिरनुत्तमा ।

गायत्री केवलं लोके युगशक्तिर्भविष्यति ॥ ५५ ॥

टीका—दशवाँ अवतार प्रज्ञावतार है, जिन्हें निष्कलंक कल्कि भी कहा गया है। इसके अवतरण की भूमिका का ठीक यही समय है। युग संधि के इस प्रभात पर्व पर महाप्रज्ञा के रूप में आद्य शक्ति गायत्री ही अब युग शक्ति बनने जा रही है ॥ ५३-५५ ॥

अब दसवाँ निष्कलंक अवतार इन दिनों हो रहा है अथवा यों कहना चाहिए कि हो चुका है। यह एक ऐसा भावना प्रवाह है जिसका उद्देश्य हजारों वर्षों की कलंक कालिमा को धोकर मानवता का मुख उज्ज्वल करना है। अवतार तो एक शक्ति, एक चेतना और एक प्रवाह है, जिसका प्रभाव सारे वातावरण को झकझोरता और झिंझोरता है। लोकमानस भी उसे अप्रभावित नहीं रह जाता। उस प्रभाव के परिणाम स्वरूप अवांछनीयता की जड़ें खोखली होने लगतीं और औचित्य की स्थिति दिनों दिन सुदृढ़ होती चली जाती है। पौराणिक भाषा में उनका नाम है निष्कलंक क्योंकि वह हमारी पिछली तथा वर्तमान दुष्प्रवृत्तियों, कलंकों को धोने आ रहा है, उसके द्वारा ऐसा भावनात्मक प्रवाह उत्पन्न किया जा रहा है, जिससे लोग अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा समस्याओं में उलझे रहने के बजाए खुशी से लोकमंगल संबंधी कार्यों के लिए कटिबद्ध होंगे। इसके लिए बढ़-चढ़कर तप-त्याग करने में भी संकोच न करेंगे। कल्कि अवतार का यह प्रयत्न प्रेरणा-प्रवाह हम अपने चारों ओर प्रवाहित होते हुए इस समय भी आसानी से देख और अनुभव कर सकते हैं।

अपने युग का प्रधान संकट आस्था संकट है। आस्थाएँ चेतना से संबंधित हैं। अतः अवतार का प्रधान कार्य क्षेत्र भी

४.५६ प्रज्ञोपनिषद्

चेतना का ही होगा। उसी से विचारधाराएँ, मान्यताएँ और आकांक्षाएँ उखाड़ी तथा जमाई जाएँगीं। इसके स्वरूप प्रारूप का निर्धारण हो चुका है। गायत्री महामंत्र में उन सभी तथ्यों का समावेश है, जो सद्भाव संपन्न आस्थाओं के निर्धारण एवं अभिवर्द्धन का प्रयोजन पूरा कर सकें। व्यक्ति का चरित्र, चिंतन और समाज का विधान प्रचलन क्या होना चाहिए? इसका ऐसा सुनिश्चित निर्धारण इस महामंत्र में विद्यमान है, जिसे सार्वभौम और सर्वजनीन ही कहना चाहिए। अतः तदनुरूप अपने समय का दशवाँ अवतार युग शक्ति गायत्री का है। गायत्री में प्रज्ञा और प्रखरता के दोनों तत्व भरे होने से उसमें सृजनात्मक शक्ति और ध्वशात्मक शक्ति दोनों का समावेश है। गायत्री मंत्र में सब कुछ विद्यमान है। उसके २४ अक्षरों में बीज रूप से मान्यताओं, संवेदनाओं और प्रेरणाओं का सुनियोजित तारतम्य विद्यमान है। युग परिवर्तन के लिए लोकमानस को उच्चस्तरीय बनाने के लिए इस अवलंबन के अतिरिक्त ऐसा कोई कारगर उपाय नहीं खोजा जा सकता जो मनुष्य में देवोपम आस्थाएँ जगाने, प्रेरणाएँ उगाने और सक्रियता अपनाने के लिए अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचा सके।

युग शक्ति गायत्री की अवतरण परंपरा में सर्वप्रथम वेदमाता स्वरूप ब्रह्माजी के माध्यम से प्रकट हुआ। भगवती के सात अवतार, सात व्याहृतियों के रूप में प्रकट हुए जो सात ऋषियों के रूप में प्रख्यात हुए। युग परिवर्तन का नवम अवतार अब से पिछली बार विश्वामित्र के रूप में हुआ। प्रस्तुत गायत्री मंत्र के विनियोग उद्घोष में गायत्री छंद सविता, देवता विश्वामित्र ऋषि का उल्लेख होता है। अस्तु अब तक के युग में विश्वामित्र ही नवम् अवतार हैं। ब्रह्माजी के माध्यम से वेदमाता का सप्त ऋषियों के माध्यम से देवमाता का विश्वामित्र के माध्यम से विश्वमाता का अवतरण हो चुका। नौ अवतरण पूरे हुए। दशवाँ अपने समय का अवतार युग आद्य शक्ति गायत्री का है। अंधकार युग के निराकरण और उज्ज्वल भविष्य का शुभारंभ इसी दिव्य अवतरण के साथ प्रादुर्भूत होते हुए हम सब अपने इन्हीं चर्म चक्षुओं से प्रत्यक्ष देख रहे हैं, युग समस्याओं के समाधान में यही प्रज्ञावतार महती और सफल भूमिका संपन्न कर सकेगा। यह इतना निश्चित है कि इसमें राई-रत्ती भर भी संदेह नहीं किया जा सकता।

अवतारस्तु ये पूर्व जातास्तेषां युगे त्विह।

समस्याः स्थानगा जाता उत व्यक्तिगता अपि ॥ ५६ ॥

इदानीं व्यापकास्ताश्च जनमानससंगताः।

क्षेत्रं प्रज्ञावतारस्य व्यापकं विद्यते ततः ॥ ५७ ॥

प्रज्ञावतार एषोऽत्र स्वरूपाद् व्यापको मतः।

सूक्ष्मं युगांतरायाश्च चेतनायाः स्वरूपतः ॥ ५८ ॥

तस्यानुकूलमेवात्र चिन्तनं स्याद् विनिर्मितम्।

नाकृतिस्तस्यकाऽपि स्यात्परं तस्योत्तमोत्तमाः ॥ ५९ ॥

प्रेरणाः संवहन्तस्तेऽसंख्याः प्रज्ञासुताः स्वतः।

कार्यक्षेत्रे गमिष्यन्ति तेनागता सुचेतना ॥ ६० ॥

कलेः पूर्वार्धं एवायमुत्तरार्धश्च मन्यताम्।

बुद्धस्य रुद्धकार्यस्यावतारो बौद्धिको महान् ॥ ६१ ॥

प्रज्ञापरिजनानां स विशालो देवसंघकः।

कालोद्देश्यात्समस्यास्ता समाधास्यति सत्वरम् ॥ ६२ ॥

टीका—पिछले अवतारों के समय समस्याएँ स्थानीय और व्यक्ति प्रधान थीं। अबकी बार ये व्यापक और जनमानस में संव्याप्त हैं। इसीलिए प्रज्ञावतार का कार्यक्षेत्र अधिक व्यापक है। प्रज्ञावतार का स्वरूप व्यापक होने के कारण युगांतरीय चेतना के रूप में सूक्ष्म होगा और तदनुसार ही चिंतन विनिर्मित होगा। उसकी अपनी कोई आकृति न होगी, पर उसकी उत्तमोत्तम प्रेरणाओं का परिवहन करते हुए असंख्य प्रज्ञापुत्र कार्यक्षेत्र में उतरेंगे, जिससे नई चेतना जगेगी। प्रज्ञावतार कल्कि का पूर्वार्द्ध, व अधूरे छूटे बुद्ध के कार्यों का पूरक है। अतः बुद्धि का उत्तरार्द्ध कहा जा सकता है। यह विचारों की क्रांति का महान बौद्धिक अवतार है। प्रज्ञा-परिजनों का विशालकाय देव समुदाय महाकाल का वह उद्देश्य पूरा करेगा, जिससे युग समस्याओं का समाधान हो सके ॥ ५६-६२ ॥

यथा प्राभातिके जाते ऋषयोऽत्रारुणोदये।

अंधकारोऽथ संव्याप्तोऽपैति दूरं तथैव तु ॥ ६३ ॥

समस्यास्ताः विकाराश्च विपदो वा विभीषिकाः।

समाहिता स्वतः स्युस्ताः प्रज्ञावतरणे भुवि ॥ ६४ ॥

चिन्ता नैव विधातव्या निराशा नोचिता मता।

नाशयिष्यति नो पृथ्वीं स्रष्टा स्वां कृतिमुत्तमाम् ॥ ६५ ॥

विपद्विभीषिकाभिस्तु समस्याभिश्च पूरिते।

समये भूमिकां कां स भगवान् संविधास्यति ॥ ६६ ॥

ज्ञात्वेदं मोदमायाता जनाः सत्रगताः समे।

प्रज्ञावतारसंबंधे ज्ञातुं जाताः समुत्सुकाः ॥ ६७ ॥

टीका—हे ऋषिगण जिस प्रकार प्रभात का अरुणोदय होते ही संव्याप्त अंधकार का निराकरण सहज हो जाता है, उसी प्रकार प्रस्तुत समस्याओं, विपत्तियों, विकृतियों एवं विभीषिकाओं का समाधान प्रज्ञावतार के अवतरण से सहज ही संभव हो सकेगा। हमें निराश होने की या चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। जिस स्रष्टा ने इस भूलोक की अनुपम कलाकृति विनिर्मित की है, वह उसे नष्ट न होने देगा। समस्याओं, विपत्तियों और विभीषिकाओं से भी वर्तमान विषम वेला में भगवान् के अवतार की क्या भूमिका होगी यह जानकर सत्र में उपस्थित जनों में सभी को बहुत प्रसन्नता हुई। वे प्रज्ञावतार के संबंध में अधिक कुछ जानने को उत्सुक

हो उठे ॥ ६३-६७ ॥

विभीषिकाएँ देखकर लगता है कि न जाने क्या होगा, परंतु यह विभीषिकाएँ भटकते मानव को गलत मार्ग से विरत करने के लिए रचे गए दंड हैं। बच्चे जब बहुत शरारत करते हैं, साधारण समझाने बुझाने से नहीं मानते, तो अध्यापकों को उन्हें दूसरी तरफ सबक सिखाना पड़ता है। माता-पिता भी ऐसे अवरो पर बच्चों के साथ कड़ाई से पेश आते हैं और कई बार वह कड़ाई ऐसी कठोर होती है, जो बहुत समय तक याद रहती है कि वैसी शरारत फिर न करें।

कात्यायन उवाच-

आद्या ये त्ववताराः षट् सामान्यासु तथैव च।

सीमितासु स्थितिष्वेव बभूवुस्ते समेऽपि तु ॥ ६८ ॥

रामावतारो य प्रोक्तः सप्तमो योऽष्टमश्च सः।

कृष्णावतारः कालेऽस्मिन् द्वयोरेव तयोरलम् ॥ ६९ ॥

लोकशिक्षणलीलायाः संदोहो भविता भुवि।

कार्यान्वितो जगत् स्याच्च येन सन्मंगलं पुनः ॥ ७० ॥

समस्यानां समाधाने प्रसंगेषु बहुष्विह।

नीतीनामुपयोगोऽथ रीतीनां च भविष्यति ॥ ७१ ॥

बुद्धावतार आख्यातो नवमो यः पुरा मया।

पूर्वाद्धस्तस्य सम्पन्नः शेषोऽयमिति मन्यताम् ॥ ७२ ॥

अपूर्णं कार्यमेकस्य द्वितीयः पूरयिष्यति।

द्वयोर्निधारणेऽप्यत्र समता च क्रियास्वपि ॥ ७३ ॥

उत्तरार्धोऽयमेवास्य कलेर्दोषान् विधास्यति।

जीर्णाच्छनैः शनैर्येन मर्त्यः स्याद् देवतोपमः ॥ ७४ ॥

कालखंडोऽयमत्रैवं भूमिकां संविधास्यति।

कृतस्यास्य युगस्यालं देवप्रेरणया स्वतः ॥ ७५ ॥

टीका—महर्षि कात्यायन ने कहा प्रथम छहः अवतार सामान्य एवं सीमित परिस्थितियों में उत्पन्न हुए थे। सातवाँ राम का और आठवाँ कृष्ण का अवतार ऐसा है, जिसका लोकशिक्षण, लीलासंदोह प्रज्ञावतार काल में, बहुत अंश में कार्यान्वित होगा, जिससे एक बार फिर सारा जगत् मंगलमय बन जाएगा। समस्याओं के समाधान में उन रीति-नीतियों का अनेक प्रसंगों में उपयोग किया जाएगा। नवम बुद्धावतार को पूर्वाद्ध और दशम प्रज्ञावतार को उत्तराद्ध समझा जा सकता है। एक का अधूरा कार्य दूसरे के द्वारा संपन्न होगा। दोनों के निर्धारणों एवं क्रियाकलापों में बहुत कुछ समता रहेगी। यह उत्तराद्ध ही कलियुग के कारण उत्पन्न दोषों को जर्जर करता जाएगा, परिणामस्वरूप मानवमात्र देवोपम बनेगा। इस प्रकार यह कालखंड भगवान की प्रेरणा से स्वयं सतयुगी की भूमिका पूरी करेगा ॥ ६८-७५ ॥

महाभारत के अवतार प्रकरण के अंत में भगवान कल्कि का परिचय देते हुए महाभारतकार ने कहा है।

कल्कि - विष्णुयशा नाम भूयश्चोत्पत्स्यते हरिः।

कलेर्युगांते सम्प्राप्ते धर्मे शिथिलतां गते ॥

पाखंडिनां गणानां हि वधार्थं भरतर्षभः।

धर्मस्य च विवृद्धयर्थं विप्राणां हितकाम्यया ॥

कलियुग के अंत में जब धर्म में अधिक शिथिलता आने लगेगी तो उस समय भगवान श्रीहरि पाखंडियों को निर्मूल करने, धर्म की वृद्धि और सच्चे ब्राह्मणों की हित कामना से पुनः अवतार लेंगे। उनके उस अवतार को कल्कि विष्णु यशा कहा जाएगा।

द्विजाति पूर्वको लोकः क्रमेण प्रभविष्यति।

दैवः कालांतरेऽन्यस्मिन्पुनर्लोकं विवृद्धये ॥

—महाभारत

अर्थात् युग परिवर्तन के इस संधिकाल में द्विजत्व संस्कार संपन्न आदर्शवादी व्यक्तियों का उत्थान होगा, और भगवान फिर से संसार को सुख समुन्नति की ओर अग्रसर करेंगे।

तत्त्वदर्शी भविष्यवक्ताओं का भी ऐसा ही मत है—

उद्देश्यत्रयमेवाह भगवान् बुद्ध आत्मनः।

बुद्धं शरणमायामि धर्मं संघं तथैव च ॥ ७६ ॥

निर्धारणानि त्रीण्येव कर्ता कर्मान्वितानि तु।

बौद्धिके नैतिके क्रांतिविधौ सामाजिकेऽपि च ॥ ७७ ॥

संघारामास्तु बुद्धस्य धर्मचक्रप्रवर्तने।

नालंदाद्यास्तथा तक्षशिलाद्याः स्थापिता इह ॥ ७८ ॥

प्रेषिताश्च ततो देशे तथा देशांतरेष्वपि।

लक्षाधिकाः परिव्राजः सुसंस्काराः प्रशिक्षिताः ॥ ७९ ॥

उपक्रमः स एवात्र प्रज्ञापीठैस्तथैव च।

प्रज्ञापुत्रैः सुसंपन्न इदानीं संविधास्यते ॥ ८० ॥

यदपूर्णं तदाकार्यं तदेवाद्य विधास्यते।

पूर्णं प्रज्ञावतारेण निष्कलंकेन सत्वरम् ॥ ८१ ॥

टीका—भगवान बुद्ध के तीन उद्देश्य थे—(१) बुद्धं शरणं गच्छामि। (२) धर्मं शरणं गच्छामि। (३) संघं शरणं गच्छामि। यही तीनों निर्धारण प्रज्ञावतार द्वारा बौद्धिक नैतिक एवं सामाजिक क्रांति के रूप में कार्यान्वित किए जाने हैं। बुद्ध के धर्मचक्र प्रवर्तन में नालंदा, तक्षशीला जैसे अनेकों संघाराम, विहार स्थापित किए गए और उनसे लाखों सुसंस्कृत परिव्राजक प्रशिक्षित करके देश-देशांतरों में भेजे गए। प्रायः वही उपक्रम प्रज्ञापीठों और प्रज्ञापुत्रों द्वारा अब संपन्न किया जाएगा। जो कार्य उन दिनों अधूरा रह गया था, वह निष्कलंक प्रज्ञावतार द्वारा पूर्ण होगा ॥ ७६-८१ ॥

व्यापकत्वान्निराकारो भविष्यत्येष शोभनः।

प्रज्ञावतारो मर्त्यानां बुद्धेः सत्कर्मसु स्पृहा ॥ ८२ ॥

यज्ञदानतपःस्वत्र पावनेषु तु कर्मसु।

बुद्धेः प्रवृत्तिरेवायमवतारो मतोऽतनु ॥ ८३ ॥

४.५८ प्रज्ञोपनिषद्

प्रेरणां प्रातिनिध्यं स गायत्री - यज्ञसंभवा ।
 अग्नेः शिखेव तस्येयं शिखारक्ता करिष्यति ॥ ८४ ॥
 कंपमानैः सदा वृक्षपल्लवैर्जायते नरैः ।
 झञ्झावातो यथादित्यकिरणाः पर्वतस्य तु ॥ ८५ ॥
 शिखरेष्वेव पूर्वं तु भ्राजमाना पतन्ति ते ।
 तथा प्रज्ञावतारस्य झञ्झावातोपमस्य च ॥ ८६ ॥
 प्रवाहस्य तु संज्ञानं वायुपुत्रसमैरलम् ।
 गुडाकेशोपमैः प्रज्ञापुत्रैः कार्ष्णैर्विधास्यते ॥ ८७ ॥
 एतेषां च समेषां तु गतीनामादिमाश्रयाः ।
 प्रज्ञापीठा भविष्यन्ति तुलिता उदयाचलैः ॥ ८८ ॥
 ज्ञानालोकं ये दिव्यं विधास्यन्ति जगत्पलम् ।
 येन भूयो नवा दिव्या चेतना प्रसरिष्यति ॥ ८९ ॥
 टीका—प्रज्ञावतार व्यापक होने से निराकार होगा । मनुष्यों की बुद्धि सत्कर्म में लगना यज्ञ-दान तप जैसे पावन कर्मों में बुद्धि की प्रकृति हो जाना ही अशरीरी प्रज्ञावतार है । उसकी प्रेरणा उसका प्रतिनिधित्व गायत्री यज्ञ की अग्नि शिखा का प्रतिरूप लाल मशाल करेगा । तूफान का परिचय हिलते वृक्ष पल्लवों से मिलता है । उदीयमान सूर्य की किरणें सर्वप्रथम पर्वत शिखरों पर चमकती हैं । उसी प्रकार प्रज्ञावतार के तूफानी प्रवाह का प्रमाण परिचय हनुमान, अर्जुन जैसे वरिष्ठ प्रज्ञापुत्रों की गतिविधियों से मिलेगा । इनकी हलचल के केंद्र

प्रज्ञापीठ होंगे, जो उदयाचल के समान ज्ञानालोक का वितरण समस्त संसार में करेंगे, जिससे नई चेतना जागेगी ॥ ८२-८९ ॥

अवतारप्रसंगोऽयं ध्यानपूर्वकमेव तैः ।
 उपस्थितैर्जनैः सर्वैः श्रुतं जिज्ञासुभिस्तदा ॥ ९० ॥
 निरचिन्वन् समे पुण्यवेलायां पूर्णश्रद्धया ।
 युगावतारजायां स्वान् विधास्यामः समर्पितान् ॥ ९१ ॥
 टीका—अवतार प्रसंग को बहुत ध्यानपूर्वक सभी उपस्थित जिज्ञासुओं ने सुना । उनसे निश्चय किया कि युग अवतार की इसी पुण्य वेला में वे पूरी श्रद्धा और निष्ठा के साथ अपने को समर्पित करेंगे ॥ ९०-९१ ॥

अन्त्यः सत्संग एषोऽत्र समाप्तश्च यथाविधि ।
 सप्तमस्य दिनस्यैवं सुखं याताश्च येन ते ॥ ९२ ॥
 भविष्यत्समये भूयो निकटे कुत्रचिद् वयम् ।
 सुयोगमीदृशं नूनं प्राप्स्याम इति चोत्सुकाः ॥ ९३ ॥
 साभिलाषाः समस्तास्ते मुनयोऽथ मनीषिणः ।
 प्रतियाताः स्वतः स्वेषु कार्यक्षेत्रेषु हर्षिताः ॥ ९४ ॥
 टीका—सप्तम दिन का अंतिम सत्संग समाप्त हो गया, जिससे सभी सुख का अनुभव कर रहे थे । फिर कभी निकट भविष्य में ऐसा ही सुयोग मिलने की अभिलाषा लेकर सभी मुनि-मनीषी प्रसन्न होकर अपने-अपने कार्यक्षेत्र को वापस चले गए ॥ ९२-९४ ॥

॥ इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदि देवसंस्कृतिखंडे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः,
 श्री कात्यायन ऋषि प्रतिपादिते प्रज्ञावतार इति प्रकरणो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥